# हिम-तरंगिनी

माखनलाल चतुर्वेदी

# दो शब्द

मेरे जीवन का कुछ 'कभी कभी,' यह संग्रह बन कर, पाठकों के हाथों में जा रहा है। इसे निर्माल्य जान कर, युग रुचि के चरणों में काँटों सा कुछ गड न जाय, अत इसे बरसों रोक रखा। इनमें से एक-दो तुकबन्दियां, बीस बरस पहले जब एक सामयिक में छप गई थीं, तब एक सज्जन ने मेरी लिखास और युग का धारणा की दूरी को इन शब्दों में मुझे लिखा था—' आदमी बडे भले हो। नाम भी अच्छा, काम भी अच्छे। परन्तु तुम्हारे काव्य को तो यार तुम्हीं लिखो, तुम्हीं पढो। बुरा न मानना। ' अमेरिका से लौट कर मैंने यह नई बीमारी तुममें देखी। ।" बङ्गाली होकर भी ये भले-मानस हिन्दी खूब पढते हैं। किन्तु इन तिलों में तेल कहां था ? मैं तो लिखता ही गया।

तब मैं लिखता क्यों गया ? मेरे निकट तो 'वे' परम सत्य हैं। आज भी वे क्षण, वे उतार चढाव, वे आसू, वे उल्लास, वे जीवित-मरण मेरे निकट खडे-से हैं। यही क्षण थे, जब मैं युग से हाथ जोड कर मन ही-मन कहता था—कभी कभी मुझे अपना भी रहने दो।

कविता की धर्मशाला में, जहां कुछ लोग कमरे पा गये थे, कुछ फर्श पर बिस्तर डाले थे, कुछ सम्पूर्ण धर्मशाला पर एकाधिकार किये थे, कुछ सम्पूर्ण धर्मशाला की खाली दीवार पर अपने ही हाथ की खरिया मिट्टी से लिख रहे थे—"यहाँ सबसे सुरक्षित और श्रेष्ठ स्थान मेरा है।" वहाँ धर्मशाला से घबडाने और भ ड से परेशान होने की भीरु वृत्ति लिये मैं अलग ही खडा रहा था, अलग ही खडा रहना चाहता रहा। मराठी कवि गोविन्दाग्रज के विनोदी नाम 'बालकराम' का यह 'नोटिस' बनकर—' इस धर्मशाला के द्वार पर, बिस्तरे पेटी लादे खड़े रहने वाले कवि मित्रो, इसमें जगह नहीं है ' जो सूझों की गंगा शिर पर लिये थे, वे लोक-श्रद्धा के देव मन्दिरों में तो पहुँच गये, किन्तु इस धर्मशाला के द्वार पर उन्हें उपेक्षित, प्रताडित और वाय-

भजी रहने ही का वरदान मिला। किन्तु इस पथ का पंथी सांसों की रेल-सड़क पर चलते-चलते जैसे वाहन से सवार बन जाता है, वैसे ही मैं भी कवि कहलाने लगा, और तुकबन्दियां छपने लगीं।

समय की लांबी यात्रा में, जीवन के अर्थ और भावों के आरोप इतने बदले कि इन पंक्तियों को छपने भेजते समय, मेरे पास कहने को कुछ नहीं रह गया। ये जीवन की पराजय है, जो सांस की तरह अपनी होती है; उस पर हिस्सा-बांटा कम ही लोगों का हो पाता है। एकान्त के ये क्षण जीवन की तरह ढुलराते हुए, पुरुपार्थ को सदा कंपकंपी आई। सन्त विनोबा ने एक बार कहा कि प्रार्थना पुरुपार्थ को उद्दण्ड होने से रोकती है, और श्रद्धा को कायर होने से। पता नहीं, ये तुकबन्दियां किसे क्या होने से रोकेंगी ?

हसन की गाड़ी
हुसैन के बैल
और बन्दे की ललकार

इस तरह 'अव्यापारेपु व्यापार' के तीन साझीदारों की तरह, यह संग्रह छापे तक पहुंच ही तब पाया, जब मित्रों ने रद्दी कागजों में से रचनायें खोजने से लगाकर 'प्रूफ' देखने तक की क्रियाओं में साथ दिया। इस तरह बिना जुड़े द्रव्यों को जोड़-जोड़कर मेरे इस 'बेजोड़' 'यश' का निर्माण हुआ !

एक सज्जन 'ग्रामसिंह' से बेतरह नाराज थे। सेवा का व्रती वह प्राणी उन्हें जैसे दुश्मन देखे। एक दिन, एक मेले में से उनके बच्चे, उसी जानवर की सूरत का एक खिलौना ले आये। आखिर उन सज्जन पुरुप ने उसकी दुम इस आशा से घिस-घिसकर छोटी कर दी कि वह कुत्ता बिल्ली दीखने लगे। किन्तु परिणाम तृतीय पुरुपत्व को प्राप्त हो गया ! वह कुत्ता रहा नहीं और बिल्ली दीख सका नहीं। 'पूजा-गीत' कहे जाने की 'उम्मीदवार' इन तुकबन्दियों की भी यही दुर्गति हुई। ये गीत पूजा रहे नहीं, प्रेम बने नहीं; अतः यह निर्माल्य, शिखर की ऊँचाई से भागते हुए, 'निम्नगा' हो गये, और 'हिम-तरंगिनी' नाम पा गये। प्रलय की आग होती तो ऊपर को सुलग कर भड़कती, 'पानी' थे कि ढालू जमीन ढूँढ़ते चल पड़े नीचे स्तर की ओर।

इनकी भूमिका थी 'चुप रहना' सो सुहृद वाचस्पति पाठक के

आग्रह से वह सधी नहीं, अतः ये दो शब्द !

कागज और स्याही से डर कर काम लेने वाला सुस्त मैं, महीनों में आज ये पंक्तियां लिख पाया। मुझे नोटिस तो मिल गया था कि यदि तुम भूमिका लिख कर नहीं भेजते हो, तो पुस्तक बिना भूमिका छप जायगी। और यह पंक्तियाँ भूमिका हैं भी नहीं। किन्तु गाड़ी के लेट होने की आशा का मारा यात्री, कभी-कभी स्टेशन तक दौड़ लगा कर देख लेता है। सो मैं भी इन पंक्तियों को लिखकर भिजवा रहा हूँ। छप गई तो गनीमत, नहीं तो फिर कभी।

कृष्णाष्टमी सं० २००४ माखनलाल चतुर्वेदी
खंडवा, म० प्रा०

# क्रम

जो न बन पाई तुम्हारे
गीत की कोमल कड़ी।

तो मधुर मधुमास का वरदान क्या है ?
तो अमर अस्तित्व का अभिमान क्या है ?
तो प्रणय में प्रार्थना का मोह क्यों है ?
तो प्रलय में पतन से विद्रोह क्यों है ?

आय, या जाये कहीं–
असहाय दर्शन की घड़ी,
जो न बन पाई तुम्हारे
गीत की कोमल घड़ी।

सूझ ने ब्रह्माण्ड में फेरी लगाई,
और यादों ने मजग घेरी लगाई,
अर्चना कर सोलहों साधें सधीं हाँ,
सोलहों शृंगार ने सौंहें बदीं हाँ,

मगन होकर, गगन पर,
बिखरी व्यथा बन फुलझड़ी,
जब न बन पाई तुम्हारे
गीत की कोमल कड़ी।

याद ही करता रहा यह लाल टीका,
बन चला जंजाल यह इतिहास जी का,
पुष्प पुतली पर प्रणयिनी धुन न पाई,
साँस और उसाँस के पट बुन न पाई,

पालकी की सिर, बिना प्रभु-
पाये, शिराह कर गिर पड़ी;
जब न बन पाई तुम्हारे
गीत की कोमल कड़ी।

आ गया आलोक अंचल से निखर कर,
गिर पड़ा लावण्य आँखों से उतर कर,
रूप ने आराधना से हार पाई,
और गुण ने गगन पर सूली सजाई,

स्वप्न का उपवन सुखा-
डाला, कि जब आई झड़ी;
मैं न बन पाई तुम्हारे
गीत की कोमल कड़ी।

तुम नहीं आये? न आओ, याद दे दो,
फैसला छोड़ा, फकत फ़रियाद दे दो,
भक्ति नहीं चाहती चरण का स्वाद दे दो,
बस प्रहारों का अनंत प्रसाद दे दो,

देख ले जग, सिसक कर,
आराधना सूली चढ़ी;
जो न बन पाई तुम्हारे
गीत की कोमल कड़ी।

और जब सावन लुभावन बरस आया,
उन्हें निज उच्चत्व पर जब तरस आया,
भूमि का शत-शत कलेजा ऊग आया,
निर्झरों ने विवश मेघ-मलार गाया,

बोल उट्ठे "लो चलो,
"विष-पान की आई घड़ी;
"उठो, बन जाओ हमारे
"गीत की कोमल कड़ी।"

: २ :

तुम मन्द चलो,
ध्वनि के खतरे बिखरे मग में—
तुम मन्द चलो।

सूझों का पहिन कलेवर सा,
विकलाई का कल जेवर सा,
घुल-घुल आँखों के पानी में—
फिर छलक-छलक बन छन्द चलो।
पर मन्द चलो।

प्रहरी पलकें? चुप, सोने दो!
धड़कन रोती है? रोने दो!
पुतली के अँधियारे जग में—
साजन के मग स्वच्छन्द चलो।
पर मन्द चलो।

ये फूल, कि ये काँटे आली,
आये तेरे बाँटे आली!
आलिंगन में ये सूली है—
इनमें मत कर फर-फन्द चलो।
तुम मन्द चलो।

ओठों से ओठों की रूठन,
बिखरे प्रसाद, छूटे जूठन,
यह दण्ड-दान, यह रक्त-स्नान,
करती चुपचाप पसंद चलो।
पर मन्द चलो।

ऊषा, यह तारों की समाधि,
यह बिछुड़न की जगमगी व्याधि,
तुम भी चाहों को दफनाती,
छवि ढोती, मत्त गयन्द चलो।
पर मन्द चलो।

सारा हरियाला, दूबों का,
ओसों के आँसू ढाल उठा,
लो साथी पाये—भागो ना,
बन कर सखि, मत्त मरंद चलो।
तुम मन्द चलो।

ये कड़ियाँ हैं, ये घड़ियाँ हैं
पल हैं, प्रहार की लड़ियाँ हैं
नीरव निश्वासों पर लिखती—
अपने सिसकन, निस्पन्द चलो।
तुम मन्द चलो।

खोने को पाने आये हो ?
रूठा यौवन पथिक, दूर तक
उसे मनाने आये हो ?
खोने को पाने आये हो ?

आशा ने जब अंगड़ाई ली,
विश्वास निगोड़ा जाग उठा,
मानो पा, प्रात, पपीहे का-
जोड़ा प्रिय बन्धन त्याग उठा,

मानो यमुना के दोनों तट
ले लेकर लहरों की बाहें-
मिलने में असफल कल-कल में-
रोये ले मधुर मलय आहें,

क्या मिलन मुग्ध को, बिछुड़न की,
वाणी समझाने आये हो ?
खोने को पाने आये हो ?

जब वीणा की खूँटी खींची,
बेबस कराह झंकार उठी,
मानो कल्याणी वाणी, उठ-
गिर पड़ने को लाचार उठी,

तारों में तारे डाल-डाल
मनमानी जब मिजराब हुई,
बन्धन की सूली के झूलों-
की जब थिरकन बेताब हुई,

तुम उसको, गोदी में लेकर,
जी भर बहलाने आये हो?
खोने को पाने आये हो?

जब मरे हुये अरमानों की
तुमने यों चिता सजाई है,
उस पर सनेह को सींचा है,
आहों की आग लगाई है,

फिर भस्म हुई आकांक्षाओं-
की, माला क्यों पहिनाते हो?
तुम इस बीते विहाग में
सोरठ की मस्ती क्यों लाते हो?

क्या जीवन को ठुकरा-
मिट्टी का मूल्य बढ़ाने आये हो?
खोने को पाने आये हो?

वह चरण-चरण, सन्तरण राग
मन-भावन के मनहरण गीत-
वन; भावी के आँचल से जिसदिन
झाँक-झाँक उट्ठा अतीत,

तब युग के कपड़े बदल-बदल
कहता था माधव का निदेश,
इस ओर चलो, इस ओर बढ़ो!
यह है मोहन का प्रलय-देश,

सूली के पथ, साजन के रथ-
की राह दिखाने आये हो?
खोने को पाने आये हो?

सत्यनारायण कुटीर
१९४९

: ४ :

जागना अपराध !
इस विजन वन-गोद में सखि,
मुक्ति - बन्धन - मोद में सखि,
विष - प्रहार - प्रमोद में सखि,
मृदुल भावों
स्नेह दावों
अश्रु के अगणित अभावों का शिकारी-
आगया विधि व्याध,
जागना अपराध !
पंख वाली, भौंह काली,
मौत, यह अमरत्व ढाली,
करुण घन सी
तरल घन सी
सिसकियों के सघन वन सी,
श्याम - सी,
ताजे, कटे से,
खेत सी असहाय,
कौन पूछे ?
पुरुष या पशु
आय चाहे जाय,
खोलती सी शाप,
कसकर बाँधती वरदान-

आप में—
कुछ आप खोती
आप में—
कुछ गान।
ध्यान में, धुन में,
हिये में, घाव में,
शर में,
आँख मूँदे,
ले रही विष को,—
अमृत के भाव !
अचल पलक,
अचंचला पुतली
युगों के बीच,
दबी-सी,
उन तरल बूँदों से
कलेजा सींच,
खूब अपने से
लपेट - लपेट
परम अभाव,
चाव से बोली,
प्रलय की साध–
जागना अपराध !

त्रिपुरी कैम्प
जनवरी १९३९

## यह किसका मन डोला ?

मृदुल पुतलियों के उछाल पर,
पलकों के हिलते तमाल पर,
निःश्वासों के ज्वाल-जाल पर,
कौन लिख रहा व्यथा कथा ?

किसका धीरज 'हाँ' बोला ?
किस पर बरस पड़ी यह घड़ियाँ
यह किसका मन डोला ?

करुणा के उलझे तारों से,
विवश बिखरती मनुहारों से,
आशा के टूटे द्वारों से—
झाँक-झाँक कर, तरल शाप में—

किसने यों वर घोला
कैसे काले दाग पड़ गये !
यह किसका मन डोला ?

फूटे क्यों अभाव के छाले,
पड़ने लगे ललक के लाले,
यह कैसे सुहाग पर ताले !
अरी मधुरिमा पनघट पर यह—

घट का बंधन खोला ?
गुन की फाँसी टूटी लखकर
यह किसका मन डोला ?

अन्धकार के श्याम तार पर,
पुतली का वैभव निखार कर,
वेणी की गाँठें सँवार कर,
चाँद और तम में प्रिय कैसा—

यह रिश्ता मुँह बोला?
वेणु और वेणी में झगड़ा
यह किसका मन डोला?

बेचारा गुलाब था चटका
उससे भूमि—कम्प का झटका
लेखा, और सजनि घट-घट का!
यह धीरज, सतपुड़ा शिखर—

सा स्थिर, हो गया हिंडोला,
फूलों के रेशे की फाँसी
यह किसका मन डोला?

एक आँख में सावन छाया,
दूजी में भादों भर आया
घड़ी झड़ी थी, झड़ी घड़ी थी
गरजन, बरसन, पंकिल, मलजल,

छुपा 'सुवर्ण खटोला'
रो रो खोया चाँद हायरी?
यह किसका मन डोला?

मैं बरसी तो बाढ़ मुझी में?
दीखे आँखों, दूखे जी में
यह दूरी करनी, कथनी में
दैव, स्नेह के अन्तराल से

गरल गले चढ़ बोला
मैं साँसों के पद सुहलाली
यह किसका मन डोला?

त्रिपुरी कैम्प
१९३८ नवम्बर

चलो छिया-छी हो अन्तर में !

तुम चन्दा
मैं रात सुहागन
चमक चमक उट्ठें आँगन में
चलो छिया-छी हो अन्तर में !

बिखर बिखर उट्ठो, मेरे धन,
भर काले अन्तस पर कन-कन,
श्याम-गौर का अर्थ समझलें
जगत पुतलियाँ शून्य प्रहर में
चलो छिया-छी हो अन्तर में !

किरनों के भुज, ओ अनगिन कर
मेलो, मेरे काले जी पर
उमग - उमग उट्ठे रहस्य,
गोरी बाहों का श्याम सुँदर में
चलो छिया-छी हो अन्तर में !

मत देखो, चमकीली किरनो
जग को, ओ चाँदी के साजन !
कहीं चाँदनी मत मिल जावे
जग-यौवन की लहर लहर में
चलो छिया-छी हो अन्तर में !

चाहों सी, आहों सी, मनु-
हारों सी, मैं हूँ श्यामल श्यामल
बिना हाथ आये छुप जाते

हो, क्यों ? प्रिय किसके मंदिर में
चलो छिया-छी हो अन्तर में !

कोटि कोटि दृग ! मैं जगमग जो-
हूँ काले स्वर, काले क्षण गिन,
ओ उज्वल श्रम कुछ छू दो
पटरानी को तुम अमर उभर में
चलो छिया-छी हो अन्तर में !

चमकीले किरनीले शस्त्रों
काट रहे तम श्यामल तिलतिल
ऊषा का मरघट साजोगे ?
यही लिख सके चार पहर में ?
चलो छिया-छी हो अन्तर में !

ये अंगारे, कहते आये
ये जी के टुकड़े, ये तारे
'आज मिलोगे', 'आज मिलोगे',
पर हम मिलें न दुनिया भर में
चलो छिया-छी हो अन्तर में !

१९३४

गो-गण सँभाले नहीं जाते मतवाले नाथ,
दुपहर आई बर-छाँह में बिठाओ नेक।
वासना-विहंग वृज-वासियों के खेत चुगें,
तालियाँ बजाओ आओ मिलके उड़ाओ नेक।
दम्भ-दानवों ने कर-कर कूट टोने यह,
गोकुल उजाड़ा है गुपाल जू बसाओ नेक।
मन कालीमर्दन हो, मुदित गुवर्धन हो,
दर्द भरे उर-मधुपुर में समाओ नेक।

१९१७
तंजाब नदी के किनारे

: ८ :

सूझ, का साथी—
मोम - दीप मेरा !
कितना बेबस है यह
जीवन का रस है यह
छनछन, पलपल, चलचल
छू रहा सवेरा,
अपना अस्तित्व भूल
सूरज को टेरा—
मोम - दीप मेरा !
कितना बेबस दीखा
इसने मिटना सीखा
रक्त-रक्त, बिन्दु-बिन्दु
झर रहा प्रकाश सिन्धु
कोटि-कोटि बना व्याप्त
छोटा सा घेरा !
मोम - दीप मेरा !
जी से लग, जेब बैठ
तम-तल पर जमा पैठ
जब चाहूँ जाग उठे
जब चाहूँ सो जावे,
पीड़ा में साथ रहे
लीला में खो जावे !
मोम - दीप मेरा !

नभ की तम गोद भरे-
नखत कोटि; पर न झरे
पढ़ न सका, उनके मल
जीवन के अक्षर ये,
आ न सके उतर-उतर
भूल न मेरे घर ये !
इन पर गर्वित न हुआ
प्रणय गर्व मेरा
मेरे बस साथ मधुर—
मोम - दीप मेरा !

जब चाहूँ मिल जावे
जब चाहूँ मिट जावे
तम से जब तुमुल युद्ध–
ठने, दौड़ जुट जावे
सूर्यों के रथ - पथ का
ज्वलित लघु चितेरा !
मोम - दीप मेरा !

यह गरीब, यह लघु-लघु
प्राणों पर यह उदार
बिन्दु - बिन्दु
आग - आग
प्राण - प्राण
यज्ञ - ज्वार
पीढ़ियाँ प्रकाश-पथिक
जग - रथ-गति-चेरा !
मोम - दीप मेरा !

१६४)

: ६ :

सुनकर तुम्हारी चीज़ हूँ
रण मच गया यह घोर,
वे विमल छोटे से युगल,
ये भीम काय कठोर;

मैं घोर रव में खिंच पड़ा
कितना भयंकर ज़ोर?
वे खींचते हैं, हाय!
ये जकड़े महान् कठोर।

हे देव! तेरे दाँव ही
निर्णय करेंगे आप;
उस ओर तेरे पाँव हैं
इस ओर मेरे पाप।

१६१७
गंगाल नदी के किनारे

: १० :

वे तुम्हारे बोल !
वह तुम्हारा प्यार, चुम्बन,
वह तुम्हारा स्नेह - सिहरन
वे तुम्हारे बोल !
वे अनमोल मोती
वे रजत - क्षण !
वह तुम्हारे आँसुओं के बिन्दु
थे लोने सरोवर
बिन्दुओं में प्रेम के भगवान् का
संगीत भर - भर !
बोलते थे तुम,
अमर रस घोलते थे
तुम हठीले,
पर हृदय-पट तार
हो पाये कभी मेरे न गीले !
ना, अजी मैंने
सुने तक भी-
नहीं, प्यारे-
तुम्हारे बोल,
बोल से बढ़कर, बजा, मेरे हृदय में
सुख क्षणों का ढोल !
वे तुम्हारे बोल !

किन्तु—

आज जब,
तव युगुल-भुज के
हार का
मेरे हिये में-
है नहीं उपहार,
आज भावों से भरा वह-
मौन है, तव मधुर स्वर सुकुमार!

आज मैंने
बीन खोई
बीन-वादक का
अमर स्वर-भार
आज मैं तो
खो चुका
साँसें-उसाँसें,
और अपना लाड़ला
उर-ज्वार!

आज जब तुम
हो नहीं, इस-
फूस कुटिया में
कि कसक समेत;
'चेत' को चेतावनी देने
पधारे हिय-स्वभाव अचेत।

और यह क्या,
वे तुम्हारे बोल!
जिनको बध किया था
पा तुम्हें "सुख साथ!"
कल्पना के रथ चढ़े आये
उठाये तर्जना का हाथ।

आज तुम होते कि
यह वर माँगता हूँ
इस उजड़ती हाट में
घर माँगता हूँ!
लौटकर समझा रहे
जी भा रहे सब बोल,

बोल पर, जी दूखता है
रहे शव शिर डोल,
अब न तुम हो तब
तुम्हारे बोल लौटे प्राण
और समझाने लगे तुम
प्राण हो तुम प्राण!

प्राण बोलो वे तुम्हारे बोल!
कल्पना पर चढ़
उतर जी पर
कसक में घोल,
एक बिरिया,
एक बिरिया
फिर कहो वे बोल!

१६२६
श्राद्ध तिथि

: ११ :

धमनी से मिस धड़कन को
मृदुमाला फेर रहे? बोलो!
दांव लगाते हो? घिर-घिर कर
किसको घेर रहे? बोलो!
माधव की रट है? या प्रीतम-
प्रीतम टेर रहे? बोलो!
या आसेतु-हिमाचल वलि-
का बीज बखेर रहे? बोलो!
या दाने-दाने छाने जाते
गुनाह गिन जाने को,
या मनका मनका फिरता
जीवन का अलाव जगाने को।

१९२६
वृन्दावन-सम्मेलन

: १२ :

भाई, छोड़ो नहीं, मुझे
सुलकर रोने दो
यह पत्थर का हृदय
आँसुओं से धोने दो,
रहो प्रेम से तुम्हीं
मौज से मंजु महल में,
मुझे दुखों की इसी
झोंपड़ी में सोने दो।

कुछ भी मेरा हृदय
न तुमसे कह पायेगा,
किन्तु फटेगा;-फटे-
बिना क्यों रह पायेगा;
सिसक-सिसक सानंद
आज होगी श्री-पूजा,
बहे कुटिल यह सुख
दुःख क्यों यह पायेगा।

वारूँ सौ-सौ श्वाँस
एक प्यारी उसाँस पर,
हारूँ, अपने प्राण, दैव
तेरे विलास पर,

चलो, सखे तुम चलो
तुम्हारा कार्य चलाओ
लगे दुखों की झड़ी
आज अपने निराश पर !

हरि खोया है ? नहीं,
हृदय का धन खोया है,
और, न जाने वहीं
दुरात्मा मन खोया है
किन्तु आजतक नहीं
हाय इस तन को खोया,
अरे बचा क्या शेष,
पूर्ण जीवन खोया है।

पूजा के ये पुष्प-
गिरे जाते हैं नीचे,
यह आँसू का स्रोत
आज किसके पद सींचे,
दिखलाती, क्षण मात्र
न आती, प्यारी प्रतिमा
यह दुखिया किस भाँति
उसे भूतल पर खींचे !

दिसंबर १९१४,
पत्नी के स्वर्गवास दिवस पर

## : १३ :

उड़ने दे घनश्याम गगन में।

बिन हरियाली के माली पर
बिना राग फैली लाली पर
बिना वृक्ष उगी डाली पर
फूली नहीं समाती तन में
उड़ने दे घनश्याम गगन में !
स्मृति-पंखें फैला-फैला कर
सुख-दुख के झोंके खा-खाकर
ले अवसर उड़ान अकुलाकर
हुई मस्त दिलदार लगन में
उड़ने दे घनश्याम गगन में !
चमक रहीं कलियाँ चुन लूँगी
कलानाथ अपना कर लूँगी
एक बार 'पी कहाँ' कहूँगी
देखूँगी अपने नैनन में
उड़ने दे घनश्याम गगन में !
नाचूँ ज़रा सनेह नदी में
मिलूँ महासागर के जी में
पागलनी के पागलपन ले—
तुझे गूँथ दूँ कृष्णार्पण में
उड़ने दे घनश्याम गगन में !

१९१४
'यमुना'-तट की पौर्णिमा

: १४ :

जिस ओर देखूँ बस
अड़ी हो तेरी सूरत सामने,
जिस ओर जाऊँ रोक लेवे
तेरी मूरत सामने।

छुपने लगूँ तुझसे मुझे
तुझ बिन ठिकाना है नहीं,
मुझसे छुपे तू जिस जगह
बस मैं पकड़ पाऊँ वहीं।

मैं कहीं होऊँ न होऊँ
तू मुझे लाखों में हो,
मैं मिटूँ जिस रोज मनहर
तू मेरी आँखों में हो।

१६१६

: १५ :

जब तुमने यह धर्म पठाया
मुँह फेरा, मुझसे बिन बोले,
मैंने चुप कर दिया प्रेम को
और कहा मन ही मन रो ले
कौन तुम्हारी बातें खोले !

ले तेरा मजहब यह दौड़ा
मौन प्रेम से कलह मचाने,
और प्रेम ने मलय-रागिनी–
भर दी अग-जग में अनबोले
कौन तुम्हारी बातें खोले।

मैंने बात तुम्हारी मानी
ठुकरा दिया प्रेम को जीकर,
मर-मर कर मैं चढ़ा शिखर पर
प्रेम चढ़ा सूली पर डोले,
कौन तुम्हारी बातें खोले।

मैंने सोचा अपने मजहब–
में तुम एक बार आओगे,
तुम आये, छुप गए प्रेम में
मेरे गिरे आँख से ओले।
कौन तुम्हारी बातें खोले !

बाहों में ले, दौड़-धूप कर
मैंने मजहब को दुलराया,
पर तुम मुझको धोखा देकर
अरे, प्रेम के जी से बोले,
कौन तुम्हारी बातें खोले !

मैं बस लौट पड़ा मजहब के
पर्वत से, सागर को धाया,
मानो गंगा का यह सोता
पतनोन्मुखी पतन-पथ डोले
कौन तुम्हारी बातें खोले !

सिंधु उठाया जी भर आया
थोड़ा-सा दिल खाली देखा,
पलकें बोल उठीं अनजाने
कौन नेह पर मजहब तोले
कौन तुम्हारी बातें खोले !

आँखों के परदों पर देखा
प्रेमराज, अंजलि भर दौड़े
रे घटवासी, मैंने वे घट
तेरे ही चरणों पर ढोले;
कौन तुम्हारी बातें खोले !

आह ! प्रेम का खारा पानी–
उसका धन, मेरी नादानी–
किस पर फेंकूँ अत्याचारी–
साजन ! तू पग थलियाँ धोले।
कौन तुम्हारी बातें खोले !

१९२१

: ८६ :

बोल तो किसके लिए मैं
गीत लिक्खूँ, बोल बोलूँ ?

प्राणों की मसोस, गीतों की-
कड़ियाँ बन बन रह जाती हैं,
आँखों की बूँदें बूँदों पर,
चढ़-चढ़ उमड़-घुमड़ आती हैं!

रे निठुर किस के लिए
मैं आँसुओं मे प्यार घोलूँ ?
बोल तो किसके लिए मैं
गीत लिक्खूँ, बोल बोलूँ ?

मत उकसा, मेरे मन मोहन कि मैं
जगत - हित कुछ लिख डालूँ,
तू है मेरा जगत, कि जग में
और कौन - सा जग मैं पा लूँ !

तू न आए तो भला कब-
तक कलेजा मैं टटोलूँ ?
बोल तो किसके लिए मैं
गीत लिक्खूँ, बोल बोलूँ ?

तुमसे बोल बोलवे, बोली-
बनी हमारी कविता रानी,
तुम से रूठ, तान बन बैठी
मेरी यह सिसकें दीवानी !

अरे जी के ज्वार, जी से काढ़
फिर किस तौल तोलूँ
बोल तो किस के लिए मैं
गीत लिक्खूँ, बोल बोलूँ ?

तुझे पुकारूँ तो हरियाती—
ये आहें, बेलों-तरुओं पर,
तेरी याद गूँज उठती है
नभ-मंडल में विहगों के स्वर,

नयन के साजन, नयन में-
प्राण ले किस तरह डोलूँ !
बोल तो किस के लिए मैं
गीत लिक्खूँ, बोल बोलूँ ?

भर-भर आतीं तेरी यादें
प्रकृति में, बन राम कहानी,
स्वयं भूल जाता हूँ, यह है
तेरी याद कि मेरी बानी !

स्मरण की जंजीर तेरी
लटकती घन कसक मेरी
बाँधने जाकर बना बंदी
कि किस विधि बंद खोलूँ !
बोल तो किस के लिए ये
गीत लिक्खूँ, बोल बोलूँ ?

१९३३

: १७ :

बोल राजा, बोल मेरे!
दूर उस आकाश के-
उस पार, तेरी कल्पनाएँ-
घन निराशाएँ हमारी,
भले चंचल घूम आएँ,
किन्तु, मैं न कहूँ कि साथी,
साथ छन भर डोल मेरे।
बोल राजा, बोल मेरे!

विश्व के उपहार, ये-
निर्माल्य? मैं कैसे रिझाऊँ?
कौन-सा इनमें कहूँ 'मेरा'?
कि मैं कैसे चढ़ाऊँ?
चढ़ विचारों में, उतर जी में,
कलंक टटोल मेरे।
बोल राजा, बोल मेरे!

ज्वार जी में आ गया
सागर सरिस खारा न निकले;
तुम्हें कैसे न्यौत दूँ
जो प्यार-सा प्यारा न निकले;
पर इसे मीठा बना
सपने मधुरतर घोले तेरे।
बोल राजा, बोल मेरे!

श्यामता आई, लहर आई,
सलोना स्वाद आया,
पर न जी के सिन्धु में
तू बन अभी उन्माद आया,
आज स्मृति बिकने खड़ी है—
झिड़कियों के मोल तेरे।
बोल राजा, बोल मेरे!

१९३४

: १८ :

बोल राजा, स्वर अटूटे
मौन का अब बाँध टूटे

जी से दूर मान बैठी थी
जी से कैसे दूर ? बता तो ?
ऐ मेरे वनवासी राजा !
दूरी बनी कुसूर ? बता तो ?
उठ कि भू पर चाँद टूटे
बोल राजा स्वर अटूटे
मौन का अब बाँध टूटे !

उस दिन, जिस दिन तुम हँस-
उट्ठे, मैंने पुनर्जन्म को पाया,
फिर मेरे जी मे तुम जनमे
मैं फिर नीला-सा हो आया,
अब वियोगिन साँझ टूटे,
बोल राजा, स्वर अटूटे,
मौन का अब बाँध टूटे !

जीवन के इस बागीचे में
सुमन खिले, फल भी तो भूले,
पर मैंने सब फेंक दिये
वे फले - फूले, वे फले - फूले !
प्राण तू मुझसे न छूटे,
बोल राजा, स्वर अटूटे,
मौन का अब बाँध टूटे !

मेरे मानस में संकट के-
कंज शीश ऊँचा कर आये,
तुतलाने का वचन दिये
मेरी गोदी में तुम भर आये,
बोल अपने कर न झूठे,
बोल राजा, स्वर अटूटे
मौन का अब बाँध टूटे !

जी की माला पर लिख दूँ मैं
कैसे तेरा देस निकाला ?
मेरी हर धक - धक खिल उट्ठी
फिर क्यों चुनूँ फूल की माला ?
सुमन के छाले न फूटे,
बोल राजा, स्वर अटूटे
मौन का अब बाँध टूटे !

जब कि मौन से भी ध्वनि झरती
तब ध्वनि की ध्वनि रोक न राजा
चल कि प्रलय भाँवरिया खेलें !
प्राणों के आँगन में आ जा;
आज मैं बन लूँ वधूटी
'बाँध-गाँठ', कि गाँठ छूटी !
काढ़ जी पर बेल - बूटे
बोल राजा, स्वर अटूटे
मौन का अब बाँध टूटे !

१९२६

: १६ :

उस प्रभात, तू बात न माने,
तोड़ कुंद कलियाँ ले आई,
फिर उनकी पंखड़ियाँ तोड़ीं
पर न वहाँ तेरी छवि पाई,
कलियों का यम मुझ में धाया
तब साजन क्यों दौड़ न आया ?

फिर पंखड़ियाँ उग उठीं वे
फूल उठीं, मेरे वनमाली !
कैसे, कितने हार बनाती
फूल उठी जब डाली - डाली !
सूत्र, सहारा, ढूँढ़ न पाया
तू साजन, क्यों दौड़ न आया ?

दो - दो हाथ तुम्हारे मेरे
प्रथम 'हार' के हार बनाकर,
मेरी 'हारों' की वन माला
फूल उठी तुमको पहिनाकर,
पर तू था सपनों पर छाया
तू साजन, क्यों दौड़ न आया ?

दौड़ी मैं, तू भाग न जाये,
डालूँ गलबहियों की माला
फूल उठी साँसों की धुन पर
मेरी 'हार', कि तेरी 'माला' !

तू छुप गया, किसी ने गाया—
रे साजन, क्यों दौड़ न आया ?

जी की माल, सुगंध नेह की
सूख गई, उड़ गई, कि तब तू
दूलह बना; दौड़ कर बोला
पहिना दो सूखी बनमाला।

मैं तो होश समेट न पाई
तेरी स्मृति में प्राण छुपाया,
युग बोला, तू अमर तरुण है
मति ने स्मृति आँचल सरकाया,

जी में खोजा, तुझे न पाया
तू साजन, क्यों दौड़ न आया ?

१९३४

: २० :

ऊषा के सँग, पहिन अरुणिमा
मेरी सुरत बावली बोली—
उतर न सके प्राण सपनों से,
मुझे एक सपने में ले ले।
मेरा कौन कसाला झेले ?

तेरे एक-एक सपने पर
सौ-सौ जग न्यौछावर राजा।
छोड़ा तेरा जगत-बखेड़ा
चल उठ, अब सपनों में खेलें ?
मेरा कौन कसाला झेले ?

देख, देख, उस ओर 'मित्र' की
इस माजू पंकज की दूरी,
और देख उसकी किरनों में
यह हँस-हँस जय माला झेले।
मेरा कौन कसाला झेले ?

पंकज का हँसना,
मेरा रो देना,
क्या अपराध हुआ यह ?
कि मैं जन्म तुममें ले आया
उपजा नहीं कीच के ढेले।
मेरा कौन कसाला झेले ?

तो भी मैं ऊषा के स्वर में
फूल-फूल मुख-पंकज धोकर—
जो, हँस उठी आँसुओं में से
छुपी वेदना में रस घोले।
मेरा कौन कसाला झेले?

कितनी दूर?
कि इतनी दूरी!
ऊगे भले प्रभाकर मेरे,
क्यों ऊगे? जी पहुँच न पाता
यह अभाग अब किससे खेले?
मेरा कौन कसाला झेले?

प्रात: आँसू ढुलकाकर भी
खिली पखुड़ियाँ, पंकज किलके,
मैं भाँवरिया खेल न जानी
अपने साजन से हिल-मिल के।
मेरा कौन कसाला झेले?

दर्पण देखा, यह क्या दीखा?
मेरा चित्र, कि तेरी छाया?
मुसकाहट पर चढ़ कर वैरी
रहा बिखेर चमक के ढेले,
मेरा कौन कसाला झेले?

यह प्रहार? चोखा गठ-बंधन!
चुंबन में यह मीठा दंशन।
'पिये इरादे, खाये संकट'
इतना क्या कम है अपनापन?
बहुत हुआ, ये चिड़ियाँ चहकीं,
ले सपने फूलों में ले ले।
मेरा कौन कसाला झेले?

१९३९

: २१ :

मन धक-धक की माला गूँथे,
गूँथे हाथ फूल की माला,
जी का रुधिर रंग है इसका
इसे न कहो, फूल की माला !

पंकज की क्या ताब कि तुम पर—
मेरे जी से बढ़ कर फूले,
मैं सूली पर भूल उठूँ
तब, वह 'बेबस' पानी पर भूले !

तुम रीझो तो रीझो साजन,
लख कर पंकज का खिल जाना
युग-धन ! सीखे कौन, नेह में—
डूब चुके तब ऊपर आना !

पत्थर सी को, पानी कर-कर
सींचा सब्वे, चरण-नंदन में
यह क्या ? पद—रज ऊग उठी
मुझको भटकाया बीहड़ बन में

नभ बन कर जब मैंने ताना
अंधकार का ताना-बाना,
तुम बन आये चँदा बाबू
रहा तुम्हें अब कौन ठिकाना ?

नजर वन्द तू लिये चाँदनी
घूम गगन में, बिना सहारा,
मेरे स्वर की रानी झाँके
बन कर छोटा-सा ध्रुव तारा !

मैं बन आया रोते-रोते
जब काला-सा खारा सागर,
तब तुम घन-श्याम आ बरसे
जी पर काले बादल बन कर,

हारा कौन? कि बरस-बरस कर
तुमने मेरी शक्ति बढ़ाई,
तेरी यह मह्लार-माला मेरे
जी में मोती बन आई !

मैं क्या करता उनको लेकर
तेरी कृपा तुझे पहिना दी,
उमड़-घुमड़ कर फिर लहरों—
से, मैंने प्रलय-रागिनी गा दी !

जब तुम आकर नभ पर छाये
'कलानाथ' बन चँदा बाबू,
मैं सागर, पद छूने दौड़ा
ज्वार लिये होकर बेक़ाबू !

आ जाओ अब जी में पाहुन,
जग न जान पाये 'अनजानी'
क़ैदी ! क्या लोगे ? बोलो तो
काला गगन ? कि काला पानी ?

जब बादल में छुप कर, उसके
गर्जन में तुम बोले बोली
तब ज्वारों की भैरव-ध्वनि को
मैंने अपनी थैली खोली !

मेरी काली गहराई को
विद्युत् चमका कर शरमाया
क्षणिक सजीले, इसीलिए मैं
अपने हीरे-मोती लाया।

आज प्राण के शेष नाग पर
माधव होकर पौढ़ो राजा!
मेरे चन्द खिलौना जी के
श्यामल सिंहासन पर आ जा!

१६२६

: २२ :

चल पड़ी चुपचाप सन-सन-सन हुआ,
डालियों को यों चिताने-सी लगी,
आँख की कलियाँ, अरी, खोलो जरा,
हिल स्वपतियों को जगाने-सी लगी

पत्तियों की चुकटियाँ
झट दीं बजा,
डालियाँ कुछ-
ढुलमुलाने-सी लगीं,

किस परम आनन्द-
निधि के चरण पर,
विश्व - साँसें गीत
गाने - सी लगीं।

जग उठा तरु - वृन्द - जग, सुन घोषणा,
पंछियों में चहचहाहट मच गई;
वायु का झोंका जहाँ आया वहाँ-
विश्व में क्यों सनसनाहट मच गई?

१६२२

: २३ :

नाद की प्यालियों, मोद की ले सुरा<br>
गीत के तार-तारों उठी छागई<br>
प्राण के बाग में प्रीति की पंखिनी<br>
बोल बोली सलोने कि मैं आगई !

नेह के नाथ क्या नृत्य के रंग में<br>
भावना की रवानी लुटाने चले ?<br>
साँस के पास आ, हास के देस छा,<br>
याद को भूलने में भुलाने चले !

प्रेम की जन्म-गाँठों जगी मंगला-<br>
राग वीणा प्रवीणा सखी भारती,<br>
आज ब्रह्माण्ड की गोपिका गा उठी<br>
सूर्य की रश्मियों श्याम की आरती !

जो उँड़ेली कृपा झोलियाँ, प्यार के-<br>
देश ने, आँसुओं में बही, आगई;<br>
प्राण के बाग में प्रीति की पंखिनी<br>
कूक उट्ठी सवेरे कि मैं आगई !

१९४९<br>
वर्धा, खंडवा

: २४ :

सुलझन की उलझन है,
कैसी दीवानी, दीवानी!
पुतली पर चढ़कर गिरता
गिर कर चढ़ता है पानी!

क्या हीतल के पागलपन का
मल धोने आई है?
प्रलयंकर शंकर की गंगा
जल होने आई है?

बूँदें, बरछी की नौकों-सी
मुझसे खेल रही हैं!
पलकों पर कितना प्राणों—
का ज्वार ढकेल रही हैं!

अब क्या रुम-झुम से छुमकेगा-
आँगन ग्वालिनियाँ का?
बन्दी गृह के वैभव पर
आँखें डालेंगी डाका?

१६२६
मनोहर-निवास

: २५ :

कौन ? याद की प्याली में
बिछुड़ना घोलता-सा क्यों है ?
और हृदय की कसकों में
गुप-चुप टटोलता-सा क्यों है ?

अरे पुराने दुःख-दर्दों की
गाँठ खोलता-सा क्यों है ?
महा प्रलय की वाणी में
उन्मत्त बोलता-सा क्यों है ?

क्या है ? है यह पुनः
मधुर आमंत्रण जंजीरों का ?
है तू कौन ? खिलाड़ी,
प्रेरक मरदानों वीरों का ?

१९४२
सिमरिया वाली रानी की कोठी
जबलपुर

: २६ :

हरा - हरा कर, हरा-
हरा कर देने वाले सपने।
कैसे कहूँ पराये, कैसे
गरव करूँ कह अपने!

भुला न देवे यह 'पाना'-
अपनेपन का खो जाना,
यह खिलना न भुला देवे
पंखड़ियों का धो - जाना;

आँखों में जिस दिन यमुना-
की तरुण बाढ़ लेती हूँ
पुतली के बन्दी की
पलकों नज़र झाड़ लेती हूँ।

१९२६
मनोहर-निवास

: २७ :

दूर न रह, धुन बँधने दे
मेरे अन्तर की तान,
मन के कान, अरे प्राणों के
अनुपम भोले भान।

रे कहने, सुनने, गुनने
वाले मतवाले यार
भाषा, वाक्य, विराम बिंदु
सब कुछ तेरा व्यापार;

किन्तु प्रश्न मत बन, सुलझेगा-
क्योंकर सुलझाने से ?
जीवन का कागज़ कोरा मत
रख, तू लिख जाने दे।

१९२१
बिलासपुर जेल
मराठी 'ज्ञानेश्वरी' पढ़ते हुए।

: २८ :

मत झनकार जोर से
स्वर भर से तू तान समझ ले,
नीरस हूँ, तू रस बरसाकर,
अपना गान समझ ले!
फौलादी तारों से कस ले
'बंधन' मुझ पर बस ले,
कभी सिसक ले
कभी मुसक ले
कभी खीझकर हँस ले,

कान खेंच ले,
पर न फेंक,
गोदी से मुझे उठाकर,
कर जालिम
अपनी मनमानी
पर,
'जी' से लिपटाकर!

मुझ पर उतर
ऊग तारों पर
बोकर,
निज तरुणाई!
पथ पायें
युग की रवि-किरनें
तेरी देख ललाई,

कभी पनपने दे
मानस कुंजों में,
करुण कहानी !
कभी लहरने दे
पंखों-सी,
*पलक-पँखियाँ, मानी*

कभी भैरवी को
मस्तक दल पर
चढ़कर आने दे,
कैसा सखे कसाला, बलि-स्वर-
माला गुँथ जाने दे !

१९२४
मनोहर निवास

जहाँ से जो खुद को
जुदा देखते हैं
खुदी को मिटाकर
खुदा देखते हैं
फटी चिन्धियाँ पहिने,
भूखे भिखारी
फ़कत जानते हैं
तेरी इन्तजारी
बिलखते हुए भी
अलख जग रहा है
चिदानंद का
ध्यान-सा लग रहा है।
तेरी बाट देखूँ,
चने तो चुगा जा,
हैं फैले हुए पर,
उन्हें कर लगा जा,
मैं तेरा ही हूँ इसकी
साखी दिला जा,
ज़रा चुहचुहाहट
तो सुनने को आ जा,
जो तू यों इछुड़ने-
बिछुड़ने लगेगा,
तो पिंजड़े का पंछी
भी उड़ने लगेगा !

१६२१
बिलासपुर जेल
प्रिय 'ज्ञानी' के आग्रह से।

: ३० :

माधव दिवाने हाव-भाव  
पै बिकाने  
अब कोई चहै बन्दै  
चहै निन्दै, काह परवाह  
चौरन ते बातें जिन  
कीजो नित आय-आय  
ज्ञान, ध्यान, स्नान, पान  
काहू की रही न चाह

भोगन के व्यूह, तुम्हे  
भोगियो हराम भयो  
दुख में उमाह, इहाँ  
चाहिये सदा ही आह,  
विपदा जो टूटै  
कोऊ सब सुख लूटै  
एक माधव न छूटै  
सो कराह की सदा सराह।

१६१६  
[सप्रेजी को राजनीति में रहने का वचन देने के पश्चात्]

: ३१ :

तु ही क्या समदर्शी भगवान् ?
क्या तू ही है, अखिल जगत् का
न्यायाधीश महान् ?

क्या तू ही लिख गया
वासना दुनिया में है पाप ?
फिसलन पर तेरी आज्ञा—
से मिलता कुम्भीपाक ?

फिर क्या तेरा धाम स्वर्ग है
जो तप, बल से व्याप्त
होती है वासना पूरिणी
वहीं अप्सरा प्राप्त ?

क्या तू ही देता है जग—
को, सौदे में आनंद ?
क्या तुझसे ही पाते हैं
मानव संकट दुख-द्वन्द्व

क्या तू ही है, जो कहता है
सम सब मेरे पास ?
किन्तु प्रार्थना की रिश्वत—
पर करता शत्रु विनाश ?

मेरा वैरी हो, क्या उसका
तू न रह गया नाथ ?
मेरा रिपु, क्या तेरा भी रिपु
रे समदर्शी नाथ !

क्या तू ही है, पतित अभागों
का शासन करता है?
क्या तू है सम्राट्?
लाज, तज न्याय दण्ड धरता है?

जो तू है, वो मेरा माधव
तू क्यों कर होवेगा
मेरा हरि तो पतितों को
उठने को अँगुलि देगा

गो - गण में जो खेले,
ग्वालों की झिड़की जो मेले
जिसके खेल - कूद से टूटें,
जीवन शाप झमेले

माखन पावे वृन्दावन में
बैठा विश्व नचावे,
वह मेरा गोपाल, पवन से
पहिले पतित उठावे।

व्याकुल ही जिसका घर है
अकुलातों का गिरिधर है,
मेरा वह नटवर है, जो
राधा का मुरलीधर है।

७ जनवरी १९३१
सेंट्रल जेल, जबलपुर

: ३२ :

उठ अब, ऐ मेरे महा प्राण !
आत्म - कलह पर
विश्व - सतह पर
कूजित हो तेरा वेद गान !
उठ अब ऐ मेरे महा प्राण !
जीवन ज्वालामय करते हों
लेकर कर में करवाल
करते हों आत्मार्पण से
भू के मस्तक को लाल !
किन्तु तर्जनी तेरी हो,
उनके मस्तक तैयार,
पथ - दर्शक अमरत्व
और हो नभ-विदलिनी पुकार;
वीन लिये, उठ सुजान,
गोद लिये खींच कान,
परम शक्ति तू महान।
काँप उठे तार - तार,
तार - तार उठें ज्वार,
खुले मंजु मुक्ति द्वार।
शांति पहर पर,
क्रान्ति लहर पर,
उठ बन जागृति की अमर तान;
उठ अब ऐ मेरे महा प्राण !

१६१८

: ३३ :

मधुर-मधुर कुछ गा दो मालिक!
प्रलय-प्रणय की मधु-सीमा में
जी का विश्व बसा दो मालिक!

रागें हैं लाचारी मेरी,
तानें बान तुम्हारी मेरी,
इन रंगीन मृतक खंडों पर,
अमृत-रस ढुलका दो मालिक!
मधुर-मधुर कुछ गा दो मालिक!

जब मेरा अलगोज़ा बोले,
बल का मणिधर, रुच रस डोले,
डोले श्याम-कुण्डली विष को
पथ-भूलना सिखा दो मालिक!
मधुर-मधुर कुछ गा दो मालिक!

कठिन पराजय है यह मेरी
छवि न उतर पाई प्रिय तेरी
मेरी तूली को रस में भर,
तुम भूलना सिखा दो मालिक!
मधुर-मधुर कुछ गा दो मालिक!

प्रहर-प्रहर की लहर-लहर पर
तुम लालिमा जगा दो मालिक!
मधुर-मधुर कुछ गा दो मालिक!

१९४४

: ३४ :

आज नयन के बंगले में
संकेत पाहुने आये री सखि !
जी से उठे
कसक पर बैठे
और बेसुधी-
के बन घूमें
युगुल-पलक
ले चितवन मीठी,
पथ-पद-चिह्न
चूम, पथ भूले !
दीठ डोरियों पर
माधव को
बार - बार मनुहार थकी मैं
पुतली पर बढ़ता - सा यौवन
ज्वार लुटा न निहार सकी मैं !
दोनों कारागृह पुतली के
सावन की झर लाये री सखि !
आज नयन के बँगले में
संकेत पाहुने आये री सखि !

१९२८
श्राद्ध तिथि

: ३५ :

मार डालना किन्तु क्षेत्र में
ज़रा खड़ा रह लेने दो,
अपनी बीती इन चरणों में
थोड़ी - सी कह लेने दो;

कुटिल कटाक्ष, कुसुम सम होंगे
यह प्रहार गौरव होगा
पद - पद्मों से दूर, स्वर्ग–
भी, जीवन का रौरव होगा।

प्यारे इतना - सा कह दो
कुछ करने को तैयार रहूँ,
जिस दिन रूठ पड़ो
सूली पर चढ़ने को तैयार रहूँ।

१९१७
एक पत्र में

महलों पर कुटियों को वारो
पकवानों पर दूध - दही,
राज - पथों पर कुंजें वारो
मंचों पर गोलोक मही।

सरदारों पर ग्वाल, और
नागरियों पर बृज बालायें
हीर - हार पर वार लाड़ले
वनमाली वन - मालायें

छीनूंगी निधि नहीं किसी-
सौभागिनि, पुण्य-प्रमोदा की
लाल वारना नहीं कहीं तू
गोद ग़रीब यशोदा की

१६१४

: ३७ :

मैंने देखा था, कलिका के
कंठ कालिमा देते
मैंने देखा था, फूलों में
उसको चुम्बन लेते
मैंने देखा था, लहरों पर
उसको गूँज मचाते
दिन ही में, मैंने देखा था
उसको सोरठ गाते।
दर्पण पर, सिर धुन-धुन मैंने
देखा था बलि जाते
अपने चरणों से ऋतुओं को
गिन-गिन उसे बुलाते
किन्तु एक मैं देख न पाई
फूलों में बँध जाना;
और हृदय की मूरत का यों
जीवित चित्र बनाना!

१६२२

: ३८ :

यह अमर निशानी किसकी है ?

बाहर से जी, जी से बाहर–
तक, आनी - जानी किसकी है ?
दिल से, आँखों से, गालों तक–
यह तरल कहानी किसकी है ?
यह अमर निशानी किसकी है ?

रोते - रोते भी आँखें मुँद–
जाएँ, सूरत दिख जाती है,
मेरे आँसू में मुसक मिलाने
की नादानी किसकी है ?
यह अमर निशानी किसकी है ?

सूखी अस्थि, रक्त भी सूखा
सूखे दृग के झरने
तो भी जीवन हरा ! कहो
मधु भरी जवानी किसकी है ?
यह अमर निशानी किसकी है ?

रैन अँधेरी, बीहड़ पथ है,
यादें थकीं अकेली,
आँखें मूँदे जाती हैं
चरणों की बानी किसकी है ?
यह अमर निशानी किसकी है ?

आँख झुकी पसीना उतरा,
सूझे ओर न छोर,
तो भी चढ़ूँ, खून में यह
दमदार रवानी किसकी है ?
यह अमर निशानी किसकी है ?

मैंने कितनी धुन से साजे
मीठे सभी इरादे
किन्तु सभी गल गए, कि
आँखें पानी - पानी किसकी हैं ?
यह अमर निशानी किसकी है ?

जी पर, सिंहासन पर,
सूली पर, जिसके संकेत चढ़ूँ -
आँखों में चुभती - भाती
सूरत मस्तानी किसकी है ?
यह अमर निशानी किसकी है ?

१९२२
हकीम जी का निवास, बुरहानपुर

: ३६ :

सजल गान, सजल तान
स-चमक चपला उठान,
गरज - घुमड़, ठान - ठान
बिन्दु-विकल शीत प्राण;
थोथे ये मोह - गीत
एक गीत, एक गीत!

छू मत आचार्य 'ग्रन्थ'
जिसके पद - पद अनंत,
वाद - वाद, पन्थ - पन्थ,
व्यापक पूरक दिगंत;
लघु मैं, कर मत सभीत।
एक गीत, एक गीत!

छू मत तू प्रणय गान
जिसके उलझे वितान,
मादक, मोहक, मलीन
चूम चाम की लुभान
कर न मुझे चाह - क्रीत,
एक गीत, एक गीत!

संस्कृति का बोझ न छू
छू मत इतिहास - लोक,
छू मत माया, न ब्रह्म,
छू मत तू हर्ष - शोक,

सिर पर मत रख अतीत;
एक गीत, एक गीत!

छू मत तू युद्ध-गान
हुंकृति, वह प्रलय-तान,
बज न उठें जंजीरें,
हथकड़ियाँ छू न प्राण!
मीत नहीं बने मीत
एक गीत, एक गीत!

गीत हो कि जी का हो,
जी से मत फीका हो,
आँसू के अक्षर हों,
स्वर अपने 'ही' का हो,
प्रलय-हार प्रणय-जीत
एक गीत, एक गीत!

१९३२

: ४० :

यह चरण-ध्वनि धीमे-धीमे !

भाग्य खोजता है जीवन के
खोये गान ललाम इसी में,
यह चरण-ध्वनि धीमे-धीमे !

अन्धकार लेकर जब उतरी
नव - परिणीता राका रानी,
मानों यादों पर उतरी हो
खोई - सी पहचान पुरानी;

तब जागृत सपने में देखा
मेरे प्राण उदार बहुत हैं !
पर झिलमिल तारों में देखा
'उनके पथ के द्वार बहुत हैं',

गति न बढ़ाओ, किस पथ आऊँ,
भूल गया अभिराम इसी में,
यह चरण-ध्वनि धीमे-धीमे !

जब स्वर्गंगा के तारों ने
आँखों के तारे पहिचाने
कोटि-कोटि होने का न्यौता
देने लगे गगन के गाने,

मैं असफल प्रयास, यौवन के
मधुर शून्य को अंक बनाऊँ
तब न कहीं, अनबोली घड़ियों
तेरी साँसों को सुन पाऊँ

मंदिर दूर, मिलन - वेला-
आगई पास, छुद्राम इसी में
यह चरण-ध्वनि धीमे-धीमे !

बाँट चले अमरत्त्व और विश्वास
कि मुझसे दूर न होंगे !
मानों ये प्रभाव तारों से
सपने चकनाचूर न होंगे।

पर ये चरण, कौन कहता है
अपनी गति में रुक जावेंगे,
जिन पर अग-जग झुकता है
वे मेरे खातिर झुक आवेंगे ?

अर्पण ? और उधार करूँ मैं ?
'हारों' का यह दाम ? लुटी मैं !
यह चरण-ध्वनि धीमे-धीमे !

चिड़ियाँ चहकीं, तारों की-
समाधि पर,नभ चीत्कार तुम्हारी !
आँख-मिचौनी में राका-रानी
ने अपनी मणियाँ हारीं।

इस अनगिन प्रकाश से,
गिनती के तारे कितने प्यारे थे ?
मेरी पूजा के पुष्पों से
वे कैसे न्यारे - न्यारे थे ?

देरी, दूरी, द्वार - द्वार, पथ-
बन्द, न रोको श्याम इसी में;
यह चरण-ध्वनि धीमे-धीमे !

हो धीमे पद - चाप, स्नेह की
जंजीरें सुन पड़े सुहानी
दीख पड़े उन्मत्त, भारती,
कोटि-कोटि सपनों की रानी

यहीं तुम्हारा गोकुल है,
वृन्दावन है, द्वारिका यहीं है
यहीं तुम्हारी मुरली है
लकुटी है, वे गोपाल यहीं है !

'गोधूली' का कर सिंगार,
मग जोह-जोह लाचार झुकी मैं।
यह चरण-ध्वनि धीमे-धीमे।

१६४२
सत्यनारायण कुटीर, प्रयाग

: ४१ :

'आते आते रह जाते हो'
जाते जाते दीख रहे
आँखें लाल दिखाते जाते
चित्त लुभाते दीख रहे।

दीख रहे पावनतर बनने
की धुन के मतवाले से
दीख रहे करुणा-मंदिर से
प्यारे देश निकाले से।

दोषी हूं, क्या जीने का
अधिकार नहीं दोगे मुझको ?
होने को बलिहार, पदों का
प्यार नहीं दोगे मुझको ?

: ४२ :

दुर्गम हृदयारण्य, दण्डका-
रण्य घूम जा आजा,
मति भिल्ली के भाव-बेर
हों जूठे, भोग लगा जा!

मार पांच बटमार, साँवले
रह तू पंचवटी में,
छिने प्राण-प्रतिमा तेरी
भी, काली पर्ण-कुटी में।

अपने जी की जलन बुझाऊँ,
अपना-सा कर पाऊँ,
"वैदेही सुकुमारि कितै गई"
तेरे स्वर में गाऊँ।

१६११

: ४३ :

हे प्रशान्त ! तूफान हिये-
में कैसे कहूँ समा जा ?
भुजग-शयन ! पर विषधर-
मन में, प्यारे लेट लगा जा !
पद्मनाभ ! तू गूँज उठा जा
मेरे नाभि-कमल से,
तू दानव को मानव करता
रे सुरेश ! निज बल से !
प्यारे विश्वाधार ! विश्व से
बाहर तुझे ढकेला,
गगन-सदृश तुझ में न
समाया, क्या मैं दीन अकेला ?

हे घनश्याम ! धधकते हीतल-
को शीतल कर दानी,
हरियाला होकर दिखला दूँ
तेरी क़ीमत जानी !
हे शुभांग ! सब चर्म-मोह-
तज, यहाँ जरा जो आओ,
तो अपनी स्वरूप-महिमा के
सच्चे बन्दी पाओ।
लक्ष्मीकान्त ! जगज्जननी
के कैसे होंगे स्वामी,
उसके अपराधी पुत्रों से
समझो जो बदनामी।

श्यामल जल पर तैर रहे हो,
श्याम गगन शिर धारा,
शस्य श्यामला से उपजा है,
श्याम स्वरूप तुम्हारा।

कालों से मत रूठो प्यारे
सोचो प्रकट नतीजा,
जिससे जन्म लिया है वह
था काला ही था बीना!

मुझ से कह छल-छन्द-
बने जो शान दिखाने वाले
मैं तो समझूँगा बाहर क्या
भीतर भी हो काले!

पोथी-पत्रे आँख-मिचौनी
बन्द किये हूँ देता,
अजी योगियों को है अगम्य
मैं भले समय पर चेता!

वह भावों का गणित मुझे
प्रतिपल विश्वास दिलाता
जो योगी को है अगम्य
वह पापी को मिल जाता!

बढ़िये, नहीं द्रवित हो पढ़िये
दीजे पात्र-हृदय भर,
सार्थक होवे नाम तुम्हारा
करुणालय भव-भय हर।

मेरे मन की जान न पाये
बने न मेरे हामी,
घट-घट अन्तर्यामी कैसे?
तीन लोक के स्वामी!

भाव-चिन्धियों में ममता का
डाल मसाला ताजा

चिक्कण हृदय - पत्र प्रस्तुत है
अपना चित्र बना जा,
नवधा की, नौ कोने वाली,
जिस पर फ्रेम लगा दूँ
चन्दन, अक्षत भूल प्राण का
जिस पर फूल चढ़ा दूँ।

१६०८
'शान्ताकारं' प्रार्थना से प्रभावित

: ४४ :

अपना आप हिसाब लगाया
पाया महा दीन से दीन,
डेसिमल पर दस शून्य जमाकर
लिखे जहाँ तीन पर तीन।

इतना भी हूँ क्या ? मेरा मन
हो पाया निःशंक नहीं,
पर मेरे इस महाद्वीप का
इससे छोटा अंक नहीं !

भावों के धन, दाँवों के ऋण,
बलिदानों में गुणित बना,
और विकारों से भाजित कर
शुद्ध रूप प्यारे अपना !

: ४५ :

आ मेरी आँखों की पुतली,
आ मेरे जी की धड़कन,
आ मेरे वृन्दावन के धन,
आ व्रज - जीवन मन मोहन !

आ मेरे धन, धन के बंधन,
आ मेरे जन, जन की आह !
आ मेरे तन, तन के पोषण,
आ मेरे मन - मन की चाह !

केकी को केका, कोकिल को—
कूज गूँज अलि को सिखला !
वनमाली, हँस दे हरियाली
यह मतवाली छवि दिखला !

: ४६ :

वह टूटा, जी जैसा तारा !
कोई एक कहानी कहता
झाँक उठा बेचारा !
वह टूटा, जी जैसे तारा !

नभ से गिरा, कि नभ में आया !
खग-रव से जन-रव में आया,
वायु-रुँधे सुर-मग में आया,
अमर तरुण तम-जग में आया,
मिटकर आह, प्राण-रेखा से
श्याम अंक पर अंक बनाता,
अनगिनती ठहरी पलकों पर,
रजत-धार से चाप सजाता ?
चला बीतती घटनाओं-सा,—
नभ-सा, नभ से —
बिना सहारा।
और कहानी वाला चुपके
काँख उठा बेचारा !
वह टूटा, जी जैसा तारा !

नभ से नीचे झाँका तारा,
मिले भूमि तक एक सहारा,
सीधी डोरी डाल नजर की
देखा, खिला गुलाब बिचारा,
अनिल हिलाता, अनल रश्मियाँ
उसे जलातीं, तब भी प्यारा—

अपने काँटों के मंदिर से
स्वागत किये, खोल जी सारा,
और कहानी—
वाली आँखों—
उमड़ी तारों की दो धारा,
वह टूटा, जी जैसा तारा।

किन्तु फूल भी कब अपना था?
वह तो बिछुड़न थी, सपना था,
झंझा की मरजी पर उसको
बिखर बिखर ढेले ढँपना था।
तारक रोया, नभ से भू तक
सर्वनाश ही अमर सहारा,
मानों एक कहानी के दो
खड़ों ने विधि को धिक्कारा
और कहानी—
वाला बोला—
तीन हुआ जग सारा।
वह टूटा, जी जैसा तारा।

अनिल चला कुरबानी गाने,
जग दृग तारक मरण सजाने,
खींच-खींच कर बादल लाने,
बलि पर इन्द्र धनुष पहिचाने,
टूटे मेघों के जीवन से
कोटि तरल तर तारे,
गरज, भूमि के विद्रोही
भू के जी में उकसाने,
और कहानी वाला चुप,
मैं जीता? ना मैं हारा।
वह टूटा, जी जैसा तारा।

[ तिहत्तर

हिम-तरंगिनी ]

मरुत न रुका नभो मंडल में,
वह दौड़ा आया भूतल में,
नभ-सा विस्तृत, विभु-सा प्राणद,
ले गुलाब-सौरभ आँचल में--
झोली भर-भर लगा लुटाने
सुर नभ से उतरे गुण गाने,
उधर ऊग आये थे भू पर,
हरे राज-द्रोही दीवाने!
तारों का टूटना पुष्प की—
मौत, दूखते मेरे गाने,
क्यों हरियाले शाप, अमर
भावन वन, आये मुझे मनाने?
चौंका! कौन?
कहानी वाला!
स्वयं समर्पण द्वारा
वह टूटा, जी जैसा तारा!

तपन, लूह, घन-गरजन, बरसन
चुम्बन, दृग-जल, घन-आकर्षण
एक हरित ऊगी दुनिया में
छूवा है कितना मेरापन?
तुमने नेह जलाया नाहक,
नभ से भू तक मैं ही मैं था!
गाढ़ा काला, चमकीला घन
हरा-हरा, छन लाल-लाल था!
सिसका, कौन?
कहानी वाला!
दुहरा कर ध्वनि-धारा!
वह टूटा, जी जैसा तारा!

दिसम्बर, १६३६
कैम्प त्रिपुरी

: ४७ :

कैसे मानूँ तुम्हें प्राणधन
जीवन के बन्दी खाने में,
श्वास-वायु हो साथ, किन्तु
वह भी राजी कब बँध जाने में ?

इन्द्र-धनुप यदि स्थायी होते
उनको यदि हम लिपटा पाते,
हरियाली के मतवाले क्यों
रंग-बिरंगे बाग लगाते ?

ऊपर सुन्दर अमर अलौकिक
तुम प्रभु-कृति साकार रहो,
मजदूरी के बंधन से उठ—
कर पूजा के प्यार रहो।

दिन आये, मैंने उन पर भी
लिखी तुम्हारी अमर कहानी,
रातें आई स्मृति लेकर
मैंने ढाला जी का पानी।

घड़ियाँ तुम्हें ढूँढ़ती आईं,
बनी कँटीली कारा-कड़ियाँ,
आग लगाकर भी कहलाईं
वे दृग-सुख वाली फुलझड़ियाँ।

मैंने आँखें मूँदीं, तुमको
पकड़ जोर से जी में खींचा,

किन्तु अकेला मेरा मस्तक
ही रह गया, झाँकता नीचा।

मेरी मजदूरी में माधवि,
तुमने प्यार नहीं पहिचाना,
मेरी तरल अश्रु-गति पर
अपना अवतार नहीं पहचाना।

मुझमें वे क़ाबू हो जाने—
वाला ज्वार नहीं पहचाना;
और 'बिछुड़' से आमंत्रित
निर्दय संहार नहीं पहचाना।

विद्युति! होओगी क्षण भर
पथ-दर्शक होने का साथी,
यहाँ बदलियाँ ही होंगी
बादल दल के रोने का साथी।

पास रहो या दूर, कसक बन-
कर रहना ही तुमको भाया,
किन्तु हृदय से दूर न जाने
कहाँ-कहाँ यह दर्द उठाया।

मीरा कहती है मतवाली
दरदी को दरदी पहचाने,
दरद और दरदी के रिश्तों—
को, पगली मीरा क्या जाने।

धन्य भाग, जी से पुतली पर
मनुहारों में आ जाते हो,
कभी-कभी आने का विभ्रम
आँखों तक पहुँचा जाते हो।

तुम ही तो कहते हो मैं हूँ
जी का ज्वर उतारने वाला,
व्याकुलता कर दूर, लाड़िली
छवियों का सँवारने वाला।

कालिन्दी के तीर अमित का
अभिमत रूप धारने वाला,
केवल एक सिसक का गाहक,
तन मन प्राण वारने वाला।

ऋतुओं की चढ़-उतर किन्तु
तुममें तूफ़ान उठा कब पाई ?
तारों से, प्यारों के तारों
पर आने की सुध कब आई ?

मेरी साँसें उस नभ पर पंख
हों, जहाँ डोलते हो तुम,
मेरी आहें पद सुहलावें
हँसकर जहाँ बोलते हो तुम।

मेरी साधें पथ पर बिछी—
हुई, करती हों प्राण-प्रतीक्षा,
मेरी अमर निराशा बनकर
रहे, प्रणय-मंदिर की दीक्षा।

बस इतना दो, 'तुम मेरे हो'
कहने का अधिकार न खोऊँ,
और पुतलियों में गा जाओ
जब अपने को तुममें खोऊँ !

१९३३

: ४८ :

मचल मत, दूर-दूर, ओ मानी !
उस सीमा - रेखा पर
जिसके ओर न छोर निशानी; मचल०
घास - पात से बनी वहीं
मेरी कुटिया मस्तानी,
कुटिया का राजा ही बन
रहता कुटिया की रानी ! मचल०
राज - मार्ग से परे, दूर, पर
पगडंडी को छू कर
अश्रु - देश के भूपति की है
बनी जहाँ रजधानी। मचल०
आँखों में दिलबर आता है,
सैन - नसैनी चढ़कर,
पलक बाँध पुतली में
भूले देती करुण कहानी। मचल०
प्रीति - पिछौरी भीगा करती
पथ जोहा करती हूँ,
जहाँ गवन की सजनि
रमन के हाथों खड़ी बिकानी। मचल०
दो प्राणों में मचे न माधव
बलि की आँख मिचौनी,
जहाँ काल से कभी चुराई
जाती नहीं जवानी। मचल०

भोजन है उल्लास, जहां
आँखों का पानी, पानी!
पुतली परम बिछौना है
ओढ़नी पिया की बानी। मचल०
प्रान - दाँव की कुंज - गली
है, गो - गन बीचों बैठी,
एक अभागिन बनी श्याम धन
बनकर राधारानी। मचल०
सोते हैं सपने, ओ पंथी!
मत चल, मत चल, मत चल,
नज़र लगे मत, मिट मत जाये
साँसों की नादानी।
मचल मत, दूर - दूर, ओ मानी!

१६२६
नागपुर

: ७९ :

मैं नहीं बोली, कि वे बोला किये।

हृदय में बेचैन
मुख भोला किये,
न हृदय ले, तौल पर तौला किये।

यह न था बाजार, पर
उनके तराजू हाथ में थी,
क्रोध के थे, किन्तु उनके
बोल थे कि सनाथ मैं थी,

सुघढ़, मन पर
गर्व को तौला किये,
झूलती, प्रभु - बोल का डोला किये,
मैं नहीं बोली, कि वे बोला किये।

आज चुम्बन का प्रलोभन
स्नेह की जाली न डाली,
नहीं मुझ पर छोड़ने को
प्रेम की नागिन निकाली,

सजनि मेरे
प्राणों का झोला किये;
डालते थे प्यार को, वे क्रोध का गोला किये,
मैं नहीं बोली, कि वे बोला किये।

समय सूली-सा टँगा था,
बोल खूँटी से लगे थे,
मरण का त्यौहार था सखि,
भाग जीवन-धन जगे थे,
रूप के अभिमान में जी का जहर घोला किये,
मैं नहीं बोली, कि वे बोला किये।

: ५० :

पुतलियों में कौन ?
अस्थिर हो, कि पलकें नाचती हैं !

विन्ध्य-शिखरों से
तरल सन्देश मीठे
बाँटता है कौन
इस ढालू हृदय पर ?
कौन पतनोन्मुख हुआ
दौड़ा मिलन को ?
कौन द्रुत-गति निज-
पराजय की विजय पर ?

पत्र के प्रतिविम्ब, धारों पर
विकल छवि बाँचती है,
पुतलियों में कौन ?
अस्थिर हो, कि पलकें नाचती हैं !

बिना गूँथे, कौन
मुक्ताहार बन कर,
सिंधु के घर जा
रहा, पहुँचा रहा है ?
कौन अंधा, अल्प
का सौंदर्य ढोता,
पूर्ण पर अस्तित्व
खोने जा रहा है ?

कौन तरणी इस पतन का

वेग जी से आँचती है ?
पुतलियों में कौन ?
अस्थिर हो, कि पलकें नाचती हैं !

धूलि में भी प्राण है
जल-दान तो कर,
धूलि में अभिमान है
उठे हरे सर,
धूलि में रज-दान है
फल चख मधुर वर,
धूलि में भगवान है
फिरता घरों घर,
धूलि में ठहरे बिना, यह
कौन-सा पथ नापती है
पुतलियों में कौन ?
अस्थिर हो, कि पलकें नाचती हैं !

११२६

: ५१ :

हाँ, याद तुम्हारी आती थी,
हाँ, याद तुम्हारी भाती थी,
एक तूली थी, जो पुतली पर
तसवीर सी खींचे जाती थी;

कुछ दूख सी जी में उठती थी,
मैं सूख सी जी में उठती थी,
जब तुम न दिखाई देते थे
मनसूबे फीके होते थे;

पर ओ, प्रहर-प्रहर के प्रहरी,
ओ तुम, लहर-लहर के लहरी,
साँसत करते साँस-साँस के
मैंने तुमको नहीं पुकारा !

तुम पत्ती-पत्ती पर लहरे,
तुम कली-कली में चटख़ पड़े,
तुम फूलों-फूलों पर महके,
तुम फलों-फलों में लटक पड़े,

जी के झुरमुट से झाँक उठे,
मैंने मति का आँचल खींचा,
मुझको ये सब स्वीकार हुए,
आँखें ऊँची, मस्तक नीचा;

पर ओ राह-राह के राही,
छू मत ले तेरी छल-छाँही,
चीख़ पड़ी मैं यह सच है, पर
मैंने तुमको नहीं पुकारा !

तुम जाने कुछ सोच रहे थे,
उस दिन आँसू पोंछ रहे थे,
अर्पण की इव दरस लालसा
मानो स्वयं दबोच रहे थे,

अनचाही चाहों से लूटी,
मैं इकली, बेलाख, कलूटी
कसकर बाँधी आनें टूटीं,
दिखें, अधूरी तानें टूटीं,

पर जो छंद-छंद के छलिया
ओ तुम, बंद-बंद के बन्दी,
सौ-सौ सौगन्धों के साथी
मैंने तुमको नहीं पुकारा!

तुम धक्-धक् पर नाच रहे हो,
साँस - साँस को जाँच रहे हो,
कितनी अलः सुबह उठती हूँ,
तुम आँखों पर चू पड़ते हो;

छिपते हो, व्याकुल होती हूँ,
गाते हो, मर-मर जाती हूँ,
तूफानी तसवीर बनें, आँखों
आये, झर-झर जाती हूँ,

पर ओ खेल-खेल के साथी,
बैरन नेह - जेल के साथी,
निज तसवीर मिटा देने में
आँखों की चंदेल के साथी,
स्मृति के जादू भरे पराजय !
मैंने तुमको नहीं पुकारा!

जंजीरें हैं, हथकड़ियाँ हैं,
नेह सुहागिन की लड़ियाँ हैं,
काले जी के काले साजन
काले पानी की घड़ियाँ हैं;

मत मेरे सींखचे बनजाओ,
मत ज़ंजीरों को छुमकाओ,
मेरे प्रणय-क्षणों में साजन,
किसने कहा कि चुप-चुप आओ;

मैंने ही आरती सँजोई,
ले-ले नाम प्रार्थना बोली,
पर तुम भी जाने कैसे हो,
मैंने तुमको नहीं पुकारा !

१६३८

: ५२ :

अपनी ज़बान खोलो तो
हो कौन ज़रा बोलो तो!
रवि की कोमल किरणों में
प्रिय कैसे बस लेते हो?
नव विकसित कलिकाओं में
तुम कैसे हँस लेते हो?
माधव की पिचकारी की
बूँदों में उछल पड़े से,
आँखों में लहलह करते
मोती हो मधुर जड़े से!
हैं शब्द वही, मधुराई
किससे कैसे छीनी है?
छानोगे किस छलिया को
छबि की चादर झीनी है?
बाँसुरिया कहाँ छुपाई
कैसे तुम गा देते हो?
कैसे विन्ध्या की गोदी
वृन्दावन ला देते हो?
क्या राग तुम्हारा जग से
बेराग बनाये देवा?
बरसों का मौन मिटाकर
"आहा" कहलाये लेवा!

जी को, तेरे गीतों में
बरबस गुँथवाये देता,
प्राणों का मोह छुड़ाता
कैसा आमंत्रण देता !

तू अमर धार गायन की,
श्रुति की तू मधुर कहानी,
भारत माँ की वीणा की
तेजोमय करुणा-वाणी !

हीतल में पागल करने
जिस समय ज्वार आता है,
उस दिवस तरुण सेना में
बलि का उभार आता है।

जिस दिन कलियों से तुझको
आन्तरिक प्यार आता है,
उस दिन उनके शिर, माँ के
चरणों उतार आता है।

आँखों की नव अरुणाई
पीढ़ी में मंगल बोती,
गुरु शुक्र उदित हो पड़ते
लख तेरी शीतल जोती;

तम में खलबली मचाता
रे गायक ! क्या तू कवि है ?
दाँवों में तू योद्धा है !
भावों में वीर सुकवि है !

: ५३ :

तुही है बहकते हुओं का इशारा,
तुही है सिसकते हुओं का सहारा,
तुही है दुखी दिलजलों का 'हमारा',
तुही भटके भूलों का है धुर का तारा,

ज़रा सीखचों में 'समा' सा छिपा जा,
मैं सुध खो चुकूँ, उससे कुछ पहले आ जा।

१९२१
बिलासपुर जेल

: ५४ :

गुनों की पहुँच के
परे के कुओं में,
मैं डूबा हुआ हूँ
जुड़ी बाजुओं में,

जरा तैरता हूं, तो
डूबों हुओं में,
अरे डूबने दे
मुझे आँसुओं में!

रे नक्काश, कर लेने
दे अपने जी की,
मिटाऊँ, ला तसवीर
मैं आइने की!

१६१०

: ५५ :

पत्थर के फर्श, कगारों में
सीखों की कठिन कतारों में
खंभों, लोहे के द्वारों में
इन तारों में दीवारों में

कुंडी, ताले, संतरियों में
इन पहरों की हुंकारों में
गाली की इन बौछारों में
इन वज्र बरसती मारों में

इन सुर शरमीले, गुण गरवीले
कष्ट सहीले वीरों में,
जिस ओर लखूँ, तुम ही तुम हो
प्यारे इन विविध शरीरों में।

१९२१
बिलासपुर जेल